International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157
Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 3; Issue 2; March 2018; Page No. 412-414

जैनेन्द्र के उपन्यासों में स्त्री–पुरूष सम्बंध

हर्षदीप
ढाणी चानन राम, कूकडावाली, फतेहाबाद, हरियाणा, भारत।

प्रस्तावना

जैनेन्द्र ने हिन्दी उपन्यासों को मध्यवर्गीय सामाजिक संस्कारिता और आत्मचेतना तथा नवीन मानवीय वैयक्तिकता[1] प्रदान की है। आज का समाज अधोमुख है। समाज के निवासी अपनी स्थिति से संतुष्ट नहीं हैं। नीतियों ने उन्हें अत्यधिक निर्धन बना दिया । फलस्वरूप उदर पूर्ति के लिए उन्हें अनेक अन्य बुराइयों की ओर अग्रसर होना पड़ता है। इस समय किसान, मजदूर तथा समाज के अन्य श्रमिक दुखी हैं, क्योंकि किसानों पर जमींदारों के माध्यम से कहर ढाया जा रहा है जबकि यंत्रीकरण के माध्यम से श्रमिकों की रोजी–रोटी पर प्रहार हो रहा है। समाज में अनेक ऐसी कुरीतियां घर कर गई ,जिनके कारण लोगों का जीवन जर्जरित होता जा रहा है। अनमेल विवाह, बाल विवाह, छुआछूत, हिंदू–मुस्लिम अनैक्य, दहेज प्रथा, विदेश गमन रोक आदि अनेक ऐसी बातें समाज में प्रचलित है, जिससे भारतीय समाज में उन्नति से बहुत दूर प्रतीत होता है। लोगों में ईर्ष्या–द्वेष का भाव भी बढ़ रहा है। जिससे सामाजिक प्रगति पर कुठाराघात हो रहा है। भारतीय विदेशियों का पक्ष प्रबल कर अपनी स्वार्थ साधना कर रहे थे जिससे समाज का नैतिक पतन भी हो रहा है। कन्या–भ्रूण हत्या हो रही है।

भारतीय समाज के मेरूदंड में रूप में जिन कृषकों एवं श्रमिकों का उल्लेख किया जाता है उनकी हालत सबसे अधिक हेय है। अंग्रेजों ने जमींदारों को शक्तिशाली बनाकर उन्हें किसानों का शोषक बना दिया है। जमींदार किसानों पर अनेक अत्याचार करते है। उनकी उपज का अधिक से अधिक भाग लेकर उन्हें निर्धन बनाकर अपने हाथ में किए रहते है। समाज के कल्याण के लिए नियुक्ति अधिकारी तरह–तरह जुल्म ढाते थे और अपी स्वार्थ–सिद्धी करते है।

समाज की इस हीनावस्था को सुधारने का उल्लेखनीय प्रयास राजा राममोहन राय ने किया। उन्होंने सामाजिक कुरीतियों तथा जाति–पाति, छुआछूत, मूर्तिपूजा आदि का विरोध किया और समाज सेवा पर जोर दिया। उन्होंने सती प्रथा तथा बाल विवाह को रोकने के लिए प्रयत्न भी किए। इसी समय समाज सुधार के लिए देशभर में प्रयत्न किए जा रहे थे, पर ''आर्य समाज'' के संस्थापक स्वामी दयानंद सरस्वती के प्रयास सर्वोपरि थे। स्वामी जी ने अवतारवाद, मूर्ति पूजा का विरोध करते हुए जाति–पाति के बंधंनों, बाल–विवाह, अषिक्षा, पर्दा प्रथा, अंधविश्वास, छुआछूत, समुद्र यात्रा निशेध आदि का विरोध किया और विधवा विवाह तथा स्त्री शिक्षा का प्रचार किया। उन्होंने विभिन्न राष्ट्रहित के सुधारों का प्रचार कर भारतीय समाज को एकसूत्र में पिरोने का प्रयत्न किया।

समाज राष्ट्र का एक अंग होता है इसलिए राष्ट्र की उन्नति के लिए यह आवष्यक है कि सामाजिक उन्नति भी हो। जैनेंद्र जी ने इस तथ्य को भलीभांति समझा, फलस्वरूप उन्होंने अपनी रचनाओं में भारतीय समाज का चित्रण करके उसे उन्नति के पथ पर ले जाने का प्रयास किया। उनके मानस में भारतीय समाज के उत्कृष्ट रूप को देखने की भावना दिखाई देती है। उन्होंने सामाजिक कुरीतियों तथा अनमेल विवाह, छुआछूत, भेदभाव, हिंदू–मुस्लिम अनैक्य आदि का विरोध किया और समाज को उद्‌बुद्ध बनाकर स्वतंत्र होने के लिए प्रेरित किया।

जैनेन्द्र के उपन्यासों पर दो प्रभाव परिलक्षित हैं – मनोविश्लेष्णावादी प्रभाव एवं भारतीय आध्यात्मवादी प्रभाव जहां तक मनोविश्लेषणवादी प्रभावों का संदर्भ है, उसमें एडलरीय अहंवाद और युग के मनःशक्तिवाद का समन्वय है। इनमें फ्रायड के यौनवान का जिसमें दमित काम के सूत्र अन्तर्निहित माने जाते हैं। तभी उनके स्त्री–पुरूष प्रेम–वासना–आसक्ति की त्रिधारा में स्नात अपनी अन्तःबाह्य वृत्तियों में रहते हुए भारतीय आध्यात्मवाद की जीव–जगत एवं ब्रह्म की चिन्तना से जुड़े रहते हैं। जैनेन्द्र ने इस मनोविश्लेषण के आयातित शब्दार्थ को अस्वीकार किया है। वे 'मनोन्वय'[2] का स्वरूप अपने उपन्यासों में मानने के लिए तैयार हैं। डॉ0 सत्येन्द्र ने इसी 'मन्वोन्वय' को 'मनोमंथन'[3] कहा है। पर जहां तक हिन्दी उपन्यास की आलोचना का प्रष्न है, उसमें व्यवहृत शब्द 'मनोविश्लेषण' ही है। जिसमें पात्र के षरीर विन्यास से अधिक मानस की प्रतिष्ठा हुई है। जैनेन्द्र ने अपनी विशिष्ट औपन्यासिकता के स्तर पर गत 45 वर्षों में हिन्दी को मात्र ग्यारह उपन्यास ही दिये हैं। ये उपन्यास कथाल्पता, पात्राल्पता के साथ आकार–अल्पता में भी विशिष्ट हैं।

मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासों में कथा शिल्प का महत्व कथा–तत्व की संक्षिप्तता और लघुता है। पर, उसके समानांतर ही पात्रों की अल्पता के साथ चरित्र चित्रण प्रमुख हो जाता है। इस दृष्टि से जैनेन्द्र के उपन्यासों में कथा रचना और पात्र अल्पता विलक्षणता होती ही है, वहीं पात्रों के चारित्र्योद्‌घाटन की व्यापक चेतना उनमें बहुल रूप से निहित है। जैनेन्द्र के पात्रों को प्रायः अशरीरी अधिक मानसिक[4] कहा जाता है। क्योंकि उनके पात्रों की बाह्य विशेषताओं एवं रूपाकृति का अंकन वहां उतना व्यापक नहीं होता जितना उनके अंतर्जगत का संकन प्रधान होता है। यही कारण है कि जैनेन्द्र के पात्र शरीरतः गौण और आत्मतः प्रमुख तथा व्यक्तित्व प्रधान है।

जैनेन्द्र के उपन्यासों में पात्र–अल्पता तो है ही। उन्होने स्वयं भी स्वीकार किया है कि मेरा काम तीन चार पात्रों से ही चल जाता है।[5] ये पात्र मांसलता ग्रहण नहीं करते , क्योंकि उपन्यासकार उन्हें अपने से 'कम मांसल और अधिक मानसिक' चाहता है। उनमें आत्मा अधिक और पंचभूत कम होने की अपेक्षा करता है।[6] यही कारण है कि पात्रें के बहिर्जगत के स्थान पर अंतर्जगत की विविधताओं द्वारा अपने पात्रों का निर्माण उन्होनें किया है। पात्र–निरूपण के स्तर पर जैनेन्द्र के प्रायः सभी उपन्यासों में लिंगभेद के अनुरूप दो प्रकार के पात्र हैं– एक पुरूष पात्र और दूसरे नारी पात्र। पुरूष पात्र जैनेन्द्र के चरित्रांकन में उतने प्रमुख नहीं रहे हैं, जितने नारी पात्र। नारी के गोपन मन को अगोपित करते हुए जैनेन्द्र ने पुरूष पात्रों को इस अगोपन प्रक्रिया के लिए माध्यम भर चुना है। इसीलिए जैनेन्द्र के उपन्यासों में नारी प्रधान है

और पुरूष गौण। नारी के चरित्र के विकास, परिपक्वता और उद्घाटन के लिए जैनेन्द्र ने उसे केंद्र में रखकर पुरूष को उसकी संबंधगत परिधि में ही विचरित रहने का अवसर दिया है। उनके पुरूष पात्र अपने पतित्व, स्वामीत्व और पुरूषार्थ के समानांतर भी अपनी स्वेच्छाचारी पत्नियों के प्रति उदात–भाव चेतना लिए हुए हैं। तभी श्रीमति शचीरानी गूर्टू उन पुरूष पात्रों को 'स्त्रैण' और पत्नी का 'सैकिण्ड हैंड प्रेम पाने के लिए उत्सुक'[7] देखती है। साथ ही यह निर्विवाद सत्य है कि जैनेन्द्र ने मानव–मन की अतल गहराईयों में नारी–पुरूष के संबंधों की परस्परता का स्वरूप[8] विश्लेषित करते हुए पुरूष पात्रों की हृदय भावनाओं को चित्रित[9] किया है जबकि समस्त औपन्यासिकता में नारी का आवेगमय, उदात और अतिमानसिक तथा वैयत्किता प्रधान चरित्रांकन उनमें उपलब्ध होता है।

उपर्युक्त परिस्थिति में पुरूष नारी के दूहरे व्यक्तित्व के सम्मुख उसका पत्नीत्व स्वीकार करते हुए उसके प्रेयसीयत्व को भी अंगीकार करता है। तभी उसमें 'अशरीरी'[10] स्वरूप की विद्यमानता का उल्लेख किया गया है। जबकि मनोविज्ञान कहता है कि मानव चेतना में दो विरोधी भाव एक सी ही तीव्रता रखते हैं। कितना ही उत्कट प्रेम क्यों न हो, घृणा या क्रोध की भावना से रिक्त नहीं हो सकता।[11] परंतु इसके विरूद्ध जैनेन्द्र के उपन्यासों के पुरूष चरित्रों को लेकर कहा जा सकता है कि उनमें घृणा और क्रोध का भाव बीज ही नहीं है। वे तो मात्र अपने उदार प्रेम के लिए ही सृजित किये गये लगते हैं और वे उपन्यासकार की यांत्रिक दार्शनिकता एवं बौद्धिकता के प्रतीक हैं। लेकिन यह कहना भी उचित होगा कि जैनेन्द्र ने आत्मपीड़ा या स्वपीड़ा के स्तर पर गांधीवादी दार्शनिक चेतना से 'स्वार्पण' को प्रधान बनाकर पुरूष को उदार हृदय चित्रित किया है, जो एक और मनोविशलेषण पर विकृतियों और मानसिकताओं से ग्रसित है, तो दुसरी ओर भारतीय आध्यात्मवादी निष्काम चेतना से पर दुख कातरता में अमिट विश्वास रखकर नारी के पर–पुरूष सामर्पण्य का 'महोत्सर्ग' मानकर ही चलते हैं। इसी स्तर पर ये पुरूष पात्र आत्मपीड़ा की चेष्टा में जीवन के उदात मूल्यों के निर्माण के लिए सतत् यत्नशील प्रतीत होते हैं। वे अपनी पत्नी की स्वैच्छिक प्रवृतियों पर बंधन स्वीकार नहीं करते। ऐसा प्रतीत होता है कि जैनेन्द्र ने चरित्र–चित्रण की एक विशेष प्रविधि अपनाकर अपने नारी पात्रों के अधिकाधिक सजीव और यर्थाथ चित्रण की चेष्टा में पुरूष पात्रों के हृदय की उदारता को एक माध्यम के रूप में ही प्रयोग किया है। नारी की आंतरिक वृतियों और मनोरोग की द्वन्द्वात्मक परिस्थितियों से जूझने का अवसर जैनेन्द्र ने जहां भी पाया है, वहीं उन्होने पुरूष पात्र की विविध प्रकार की हीन ग्रंथियों के माध्यम से उसे उदार हृदय तथा अपौरषय रूप में प्रयोग किये जाने में विलम्ब नहीं किया है।

पुरूष–पात्रों की अपेक्षा नारी–पात्रों के औचित्य को स्वीकारते हुए पाष्चात्य विचारक और मनोचिकित्सक फ्रायड ने कहा है कि पुरूष को अपना ममत्व, अपना आत्मविश्वास अपनी सम्वेदना प्रदानकर वे (नारियां) सभ्यता के विकास का प्रयत्न करती हैं। क्योंकि पुरूष केवल जीवन की व्यक्तिगत बातों के संबंध में ही सोचता है और जीवन में वास्तविक मूल्यों की अवहेलना करता है।[12] नारी वात्सल्यमयी, स्नेह, दया, ममता और कोमलता आदि गुणों से संपन्न होकर अपने मूक त्याग से अपने अस्तित्व को पूर्णत्या मिटाकर अपने पति की आत्मा का अंश बन जाती है। तन पुरूष का रहता है, पर आत्मा वस्तुतः नारी की ही रहती है। नारी स्थिति पुरूषों की अपेक्षा अधिक मूल्यावान है, और वह सत्य अर्थों में पुरूष को पूर्णता प्रदान करती है।[1] इस पर हिंदी उपन्यास साहित्य में जैनेन्द्र ने नारी की संपूर्णता परक अभिव्यक्ति के लिए पुरूष को मौन रखने की यथेष्ट चेष्टा की है। जैनेन्द्र के समस्त पात्र अपनी विविध कुण्ठाओं को लिए हुए भी नारी के चरित्र–विकास में सहयोगी बनते हैं। यही नहीं, ये पुरूष पात्र मूलतः नारी की शरीरिक मांग को औचित्य देते हैं। नारी के समर्पण को नकारते हुए जिस जैनेन्द्र जितेन्द्रयता का वे निर्माण करते हैं, उसमें नारी का शरीरिक नहीं, मानसिक भोग की उदात वृति ही उपलब्ध होती है। मुक्त साहचर्य की स्थिति में नारी पुरूष अपने अधूरेपन की सार्थकता में एक दूसरे के लिए समर्पित भाव रखकर ही एक विशिष्ट जितेन्द्रयता का निर्माण करते हैं। जैनेन्द्र के पुरूष पात्रों की स्थिति प्रायः यही है कि वे अपनी पत्नी के वर्ण्य पर पुरूष सामर्पण्य को सहज रूप में ग्रहण करते हैं। वे कामना करते हें कि पत्नीत्व की सार्थकता इसी में है कि वह पुरूष की ग्रंथि खोलने का उपादन बने। तभी वही पुरूष कहता है– अवर क्वीन कैन डू वोर रांग।[13] जैनेन्द्रीय विचारधारा के इसी उत्स के कारण उनके उपन्यासों में नारी चरित्र की प्रधानता है।

जैनेन्द्र द्वारा नारी चारित्र्य के बहुल विशलेषण के दो प्रमुख कारण हैं– एक तो उन्होने मनोविश्लेषण के माध्यम से नारी चारित्र्य की संगठना की नवीनता प्रतिपादित करने की चेष्टा की है। इस रूप में उन्होंने 'नारी नारी है, पुरूष पुरूष है' की स्थिति से ऊपर नारी–पुरूष के अद्वैत को प्रतिपादित करने का आध्यात्मवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। यही नहीं, नारी को केन्द्रस्थ मानकर जो सामाजिक, नैतिक और आर्थिक चिंतन–मनन की परम्परा थी उसे तोड़ने के प्रयास में जैनेन्द्र ने उसे व्यक्ति से अधिक वैयत्किता बनाया है और इसी दिशा में उसके आंतरिक मानव को ही अधिक विश्लेषित किया है। दूसरा प्रमुख कारण यह है कि जैनेन्द्र ने नारी–पुरूष के समानता बिंदु पर नारी की महता स्थापित कर संपूर्णतावादी वैचारिकता से नवीन मूल्यों की स्थापना करने का यत्न किया है। इस स्थापना के बिंदु पर जैनेन्द्र ने नारी को लेकर पारिवारिक, सामाजिक, नैतिक, आर्थिक एवं वैयक्तिक मूल्यों के यथार्थ को जानने की चेष्टा की है। जिसमें परम्परित मूल्य विघटित हुए हैं और नवीन मूल्यों की स्थापना का संघर्ष प्रारम्भ हुआ है। जैनेन्द्र की नारी अपनी स्वतंत्रता, स्वच्छंदता और नैतिक मान मूल्यों के स्तर पर विगत के वैवाहिक आदर्शों को शिथिल बनाने में समर्थ हुई है। साथ ही प्रेम और विवाह की सीमाओं की आबद्धता से परे उसने यौन नैतिकता विषयक नवीन मूल्य स्थापित किये हैं। तभी 'घर–बाहर' की संघर्षात्मक चेतना से घिरी जैनेन्द्र की नारी अपने व्यक्तिवादी स्वच्छंद चिंतन से परिचालित होती है। ऐसी स्थिति में उनमें 'उद्याम वासना का पवहमान वेग हैं, जो महज पति से तृप्त नहीं होता, दूसरे पुरूष की ओर बरबस अनुधावित होता है। वे जीवन की अलस जड़ता को प्रश्रय नहीं देती, उन्हें भीतर ही भीतर मधुर राग का आभास होता है..... प्रेमी पात्र भी किसी व्यावहारिक आचरण के नियंत्रण में नहीं है।[14]

जैनेन्द्र की नारी चित्रण के स्तर पर, उनमें स्वकीयत्व और परकीयत्व ढूंढना व्यर्थ है। वे स्त्री पुरूष एक दूसरे के सुभीते के लिए[15] तथा एक दूसरे में विलय खोजने[16] के लिए ही कथा–विन्यास में आते हैं। वह देखना चाहती है कि– 'वह प्रयोजनमुक्त नातों–रिश्तों से भी मुक्त घरबारी और कारोबारी होकर यहां रहता है।'[17] क्योंकि वह जानती है कि स्त्री का काम पुरूष को सामने चलाना है, पीठ की ओर भागना चाहे, तब हम सामने हो जाती हैं। हमसे पार होकर वह जा नहीं सकेगा।[18]

जैनेन्द्र ने नारी चारित्र्य की विशद् व्याख्या को अहंवादिता के चिंतन पर भी विश्लेषित किया है। फ्रायडीयन कामवासना ही अहंभाव का मूल है, जो चेतन मानस में आत्मरति मातृरति पितृरति स्वर्गीयरति तथा विजातीयरति जैसी विभिन्न विकृतियों से पीड़ित रहता है। परिणामस्वरूप ये नारियां आंतरिक भावों की तुष्टि के लिए यत्नषील बनी रहती है। इस अहंतृप्ति का विगलन दूसरे के लिए 'समर्पणभाव' ही है। अहं विगलन में अपना 'स्व' अर्पित कर दूसरे का 'परत्व'

अपहरित करना ही श्रेयस्कर है।

जैनेन्द्र के नारी पात्रों की नियति प्रेमिल और स्वच्छंद है। पर वे अपनी इन दोनों स्थितियों में अपनी त्रिकोणात्मक प्रेम की सहनीयता[19] को भोगने के लिए निजत्व की स्वैच्छिक यात्रा में किसी तृतीय आहत पक्ष को अपनी संपूर्णता में पाने की लालसा में जीती है। यही कारण है कि वे अपने दुराग्रह के कारण जीवन की विविध विरोधी परिस्थितियों में निम्नगामी और अप्रत्याशित स्तर पर उतर आती हैं।[20] जैनेन्द्र के नारी पात्रों के विश्लेषण के स्तर पर इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि प्रेम की त्रिकोणात्मक सहनीयता की स्थिति में ही इनका चारित्र्य अधोगति के लिए कहीं बाध्य नहीं किया है। अपनी अहं–मानसिकता के कारण वे अंर्तद्वन्द्व ग्रस्त होकर अपने खण्डित व्यक्तित्व की उतरदायी स्वयं ही बनी हैं। जैनेन्द्र के उपन्यासों में हम पात्रों के दो वर्ग कर सकते हैं– नारी और पुरूष। पहले हम उनके नारी पात्रों का उल्लेख ही करते हैं। कारण यह है कि जैनेन्द्र नारी मनोविश्लेषण के प्रवर्तक उपन्यासकार हैं।

निष्कर्षः

जैनेन्द्र के उपन्यासों में नारी पात्रों का वर्गीकरण सामाजिक एवं नैतिक आधार पर नहीं किया जा सकता है। जैनेन्द्र की नारियों की एक विषेशता यह भी है कि किसी दृष्टि से एक स्थिति में हो सकती है और उन्हें उस वर्ग विशेष में रखा जा सकता है; परंतु दूसरी दृष्टि और दूसरी स्थिति आते ही उसे पुनः नवीन वर्ग में लेना भी आवश्यक प्रतीत होता है। इसलिए नारी के विविध रूपों के आधार पर उसका विश्लेषण किया जा सकता है। समाज और वयक्तिक स्तर पर नारी के विविध रूप प्रकट होते हैं। इस स्थिति में, एक समय में, एक से अधिक रूपों में भी उसका वर्गीकरण एवं विश्लेषण किया जा सकता है। अस्तु, यहां उपन्यासों के आधार पर उनमें आये हुए नारी पात्रों का विश्लेषण ही यहां विस्तारमय से अत्यंत संक्षिप्त बिंदूओं में से ही किया जा रहा है।

संदर्भ

1. कुलश्रेष्ठ, विजय : जैनेन्द्र की औपन्यासिक धारा–जयवर्धन की पहचान (सं. रामदरश मिश्र), पृ 24
2. जैनेन्द्र से भेंट, 8 नवम्बर 1974
3. सत्येन्द्र (डॉ.) : हिन्दी उपन्यास विवेचन, पृ0 238
4. शुक्ल, श्रीमती ओम : हिंदी उपन्यास की शिल्प विधि का विकास, पृ 236
5. सुनीता, पृ0 168
6. साहित्य का श्रेय और प्रेय, पृ0 168
7. गूर्टू, शचीरानी : वेचारिकी, पृष्ठ 210
8. कुल श्रेष्ठ विजय : जयवर्धन की पहचान एवं रामदरश मिश्र, पृ 54
9. वही, पृ0 55
10. शुक्ल श्रीमती ओम् : हिंदी उपन्यास की शिल्प विधि का विकास, पृ0 236
11. ब्राउन : साइकोडेनेमिक्स आव एब्नार्मल बि हे वियर पृ0 159 पर द्रष्टव्य है– Not even the must passionate love of a man for a woman, is free from Certain amount of hate or aggressivity
12. जैनेन्द्र : काम प्रेम और पविार, पृ0 27 पर द्रष्टव्य–परस्पर भोग वर्तमान है तब तक घृणा की बीज भी वर्तमन हैं।
13. फ्रायड सिंगमण्ड : सिविलाइजेशन एण्ड इटस डिस कण्टेण्टस, पृ0 7
14. सिंहा. सुरेश (डॉ.) : हिंदी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना, पृ0 67
15. सुनीता, में पत्नी सुीता द्वारा हरिप्रसन्न को किये गये समर्पण का उल्लेख करने पर श्रीकंत का कथन।
16. गूर्ट् शचीरानी : जैनेन्द्र का मनोवैज्ञानिक अतिवाद,– वैचारिकी, पृ0 210
17. व्यतीत पृ0 123
18. वही, पृ0 123
19. सुनीता, पृ0 92
20. वही, पृ0 69
21. कुल स्त्रेष्ठ विजय : जेनेन्द्र की फ्रायडीय नारी और जयवर्धन की इला, सप्तसिंहधु, सितम्बर 1967, पृ0 67
22. गूर्ट्, शचीरानी : वैचारिकी, पृ. 211